23
चले
आ रहे
हैं
८११.०७
गोपा/च-१
गोपाल प्रसाद व्यास

लेखक

चले आरहे हैं

(शिष्ट, सुरुचिपूर्ण व्यंग्य विनोदमयी कविताएँ)

लेखक

गोपालप्रसाद व्यास

आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली - ६

लेखक की अन्य रचनाएँ

अजी सुनो…! (सचित्र, पुरस्कृत)	५.००
मैंने कहा… (सचित्र पुरस्कृत)	५.००
कुछ सच : कुछ झूठ (सचित्र, पुरस्कृत)	४.००
कदम-कदम बढ़ाए जा (खंड-काव्य)	१.५०
हमारे राष्ट्रपिता	२.००
चित्रमय गांधी	१.००
गांधी-चरित	०.५०

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	**चार रुपए**
प्रथम संस्करण	:	१ ९ ५ ९
व्यंग्य चित्रकार	:	रवीन्द्र शर्मा
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-६

उनको
जो अपने पर नहीं हँसते

मेरी समझ से

बिना रंग के जीवन और बिना व्यंग्य के साहित्य भी कोई साहित्य है ? ऐसे समझ लीजिए जैसे किसी ने बिना सुपारी के पान पकड़ा दिया हो।

जिस घर में बच्चे नहीं किलकते, वह घर भी कोई घर है। ऐसा लगता है जैसे भूत-वासा हो। इसी प्रकार किसी भाषा की साहित्य-वाटिका चाहे अनेक प्रकार के फूलों से सजी हो, भाँति-भाँति की क्यारियों से रच-पचकर सँवारी गई हो, उसकी रौस-पट्टियाँ बड़े-बड़े होशियार मालियों ने सहेजी-सुधारी हों, लेकिन जब तक उसमें व्यंग्य-विनोद के नित्य नये, प्राणवान गुलाब चटखारे नहीं लेते उसमें वह आब नहीं आ सकती।

यही बात जातियों के बारे में भी है। युद्धों से वे नाम (या बदनामी) अवश्य कमा लेती हैं; भाँति-भाँति की भौतिक प्रगति से उनकी बुद्धि और कार्य-कुशलता का अच्छा परिचय मिलता है, लेकिन वे ज़िन्दा रहती हैं हँसने और किलकने से, प्रसन्नता की तरंग में थिरक उठने से। कहने का तात्पर्य यह कि जिस जाति के जीवन और साहित्य में हर्ष और उल्लास नहीं होता, वह जीती तो है, लेकिन उसकी दशा ठीक उस रोगी के समान होती है जो हर मिनट अपनी मौत और ज़िन्दगी के दिन गिना करता है।

लेकिन इतनी मोटी बात भी हमारे आज के साहित्य और समाज-नियन्ताओं के भेजे-कलेजे में ठीक से फिट नहीं बैठ पा रही। लोग जगह-ब-जगह मुँह फुँलाकर बैठने को ही गम्भीरता समझ बैठे हैं। जैसे एकमात्र गम्भीरता ही बड़प्पन की निशानी हो। ऐसा भी बड़प्पन क्या कि जिसमें छाती कस जाय, चेहरा ढक जाय और साँस रुकने लगे। यह तो भेड़ को शेर की खाल पहनाना हुआ। शृंगार के नाम पर औरत के नाक-कान में सोने के डले लटकाना हुआ। थोथी कुलीनता के लिए गज भर का घूँघट काढ़ना हुआ।

मेरी समझ में नहीं आता कि लोग, जहाँ-तहाँ अपने को बन्द किए क्यों चल रहे हैं ? जीवन के मुक्त खिल-खिल प्रकाश को अपनी आत्मा में क्यों नहीं उतरने देते ? क्यों अपने तन-मन को जान-बूझकर रोगी बनाए हुए हैं ? यह मनहूसी का आलम उन्हें कहीं का न रहने देगा। वे दीन से भी जाएँगे और दुनिया से भी। साहित्य को भी कुन्द करेंगे और समाज को भी।

मैं अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि जहाँ तक हिन्दी साहित्य का सवाल है, वह बहुत ही पुराने कब्ज़ से पीड़ित हैं। उसका हाज़मा एकदम खराब हो गया है। उसका जिगर यानी शृंगार-रस बढ़ गया है। उसके नेत्र यानी समालोचक पीलिया से पीड़ित हैं। उन्हें हर चीज पीली-ही-पीली दिखाई देती है। वे हीरे की पहचान भूल गए हैं और पुखराज को ही सर्वोपरि रत्न समझ बैठे हैं। इसका इलाज तुरन्त होना चाहिए।

लेकिन नेताओं या साहित्य-शास्त्रियों को कोसने से ही काम नहीं चलेगा। ये बेचारे तो समाज और साहित्य के शंख होते हैं। जैसी बयार बही, या जैसी फूँक मिली वैसे बज उठे। जब समाज में ही हँसना-हँसाना छिछोरापन माना जाता है। 'औरत हँसी कि फँसी' जैसी भौंडी कहावतें हमारे यहाँ चलती हैं और 'हँसी को लड़ाई का घर' समझा जाता है तो आज के कुर्सीवादी नेता और पाठ्यक्रमी समालोचक गरीब क्या खाकर क्रान्ति करेंगे? जब 'हँसना बामन' 'कुल का बोर' बता दिया गया है और हँसने से आदमी के 'लच्छन झड़ते' कहे जाते हैं, तब जीवन और साहित्य में हास्य कैसे प्रतिष्ठित हो सकता है? इसके लिए तो हमें जड़-मूल से समाज और साहित्य के मान बदलने होंगे।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि इन सब तर्क-कुतर्कों, बाधा-व्यवधानों, उपेक्षा और अनुत्साह के गलघोंटू वातावरण के बीच रहकर भी जिन महाप्राण पुरुषों ने, जिन रस-सिद्ध साहित्यकारों ने जीवन और साहित्य में हास्य की ज्योति को अपने हृदय के बूँद-बूँद नेह से जगाए रखा है, वे सचमुच हमारी जाति के, समूची मानवता के चिरवंदना के महत्तम अधिकारी हैं। क्योंकि लोगों की करुणा को पिघलाकर उन्हें रुलाना सहज है, उन्हें सस्ती कामुकता परोस कर रिझाना भी आसान है, अपने मतलब के लिए भोली मनुष्यता को लोग प्राय: फुसला भी लिया करते हैं, लेकिन जीवन-संघर्ष से क्लान्त, दैहिक-दैविक और भौतिक तापों से तची एवं पीड़ित जनता के मुँह पर मुस्कान की एक छोटी-सी रेखा उभार देना करोड़ों डालरों से महँगी वस्तु है।

मनुष्य के मुँह पर हँसी लाना जानवरों के वश का काम नहीं। जानवर न हँसते हैं, न हँसाते हैं। उनका काम सिर्फ डरना और डराना होता है। मनुष्य के मन की कली तो किसी सहृदय की निर्मल मुस्कान से ही खिलती है। मैं नहीं जानता कि जीवन और साहित्य की सहृदयता से बढ़कर कोई और दूसरी कसौटी भी है? हास्य-रस के व्रती का मार्ग तो सहृदयता के बिना एक डग भी दूभर है।

हास्य हर प्रकार की जड़ता को, हर ओर की घुटन को, हर तरह की सड़न को

या यों कहिए कि रूढ़ि को, कुंठा टूक-टूक कर देता है। ठीक उसी तरह जैसे सूर्य का प्रकाश हिम-खंडों की जड़ता को नष्ट करता हुआ कुहासे के घटाटोप को छिन्न-भिन्न कर डालता है।

सच्चा हास्य दूसरों पर नहीं, अपने पर हँसता है। वह छेदता नहीं, छेड़ता है, वह भी भाले की नोक से नहीं, फूलों की छड़ी से, फुसलाता नहीं, हुलसाता है। वह सही अर्थों में कान्ता-सम्मत है। हृदय में ऐसे बैठ जाता है, जैसे सुगृहिणी की बात। इसीलिए हृदय-परिवर्तन की, विचारों के प्रचार की जितनी मीठी और सबल शक्ति हास्यरस में है, उतनी किसी और में नहीं। हजार उपदेश और आदेश एक तरफ और व्यंग्य-विनोद की एक छोटी-सी उक्ति एक तरफ। कोई तुलना नहीं दोनों की।

कोई भी जाति बिना गाए, बिना नाचे, बिना हँसे जीवित नहीं रह सकती क्योंकि प्रसन्नता ही जीवन का चरम लक्ष्य है। आनन्द ही मनुष्य की परम अभिलाषा है। ब्रह्मानन्द या विषयानन्द में मूल वस्तु आनन्द ही है। इसलिए जीवन से हीन, शुष्क, निरानंदी या आध्यात्मिक अर्थों में पापी ही हास-परिहास से बचते हैं, भागते हैं। वही उसकी उपेक्षा कर सकते हैं।

हाँ तो आइए, आनन्द का जीवन जिएं। जीवन को हँस-हँसकर जिएं और दूसरों को भी हँसते देखना पसन्द करें। फेफड़ों को सड़ाने वाली अनावश्यक गंभीरता को उतार फेंकें। जो सहज है; सरस है, सस्मित है वही हमारा है, वही सबका है। मेरी तुच्छ राय में हास्य-रस का मूल सिद्धान्त यही है।

—गोपालप्रसाद व्यास

खरी-खोटी

मैं हास्य-रस का लेखक क्या हुआ, मुसीबत आ गई। लोगों ने परेशान कर रखा है। चारों ओर से मुझे सीखों, सलाहों, आवाज़ों और तानों का सामना करना पड़ रहा है। कोई कुछ कहता है कोई कुछ। एक कहते हैं कि मैंने पत्नी पर या उस महिमामयी के माध्यम से जो कुछ हिन्दी को दिया है, वह सचमुच अनूठा है और मुझे इस सिलसिले को आगे बढ़ाते चलना चाहिए। लेकिन दूसरे उतनी ही ज़ोर से यह भी चिल्लाते हैं कि यह सब घर के रोने, तोते-मैना जैसे पुराने किस्से बहुत हुए, इनसे साहित्य और समाज का कुछ भी कल्याण नहीं होता, इन्हें बन्द कीजिए और कुछ नया लिखिए।

कुछ कहते हैं कि अपने "मैं" पर जो मैं व्यंग्य-विनोद का रँग बिखेरता हूँ यह हास्य साहित्य की सर्वोत्तम विधा है। यह असर तो पूरा करती है मगर पढ़ने या सुनने वाले को चोट सीधी नहीं पहुँचाती। लेकिन कुछ लोग यह भी कहते हैं कि यह तो अहंकार का खुला प्रदर्शन है और इसमें अपने द्वारा दूसरों को सीधी चोट पहुँचाई जाती है।

कुछ कहते हैं कि मेरा साहित्य सरल है, सुबोध है, शिष्ट है, और ऐसा है जिसे घर-परिवार में सबके साथ बैठकर सहज ही पढ़ा-सुना जा सकता है। लेकिन कुछ यह भी कहते हैं कि अच्छे हास्य के लिए इतना काफी नहीं है। उसमें कुछ और भी चाहिए। मेरा साहित्य एकदम सामान्य किस्म का है। मेरी ख्याति सिर्फ मंचीय है। यानी मैं साधारण किस्म के लोगों में ही लोकप्रिय हूँ। मेरा हास्य बड़ा चलता यानी सिनेमाई तर्ज का है। लेकिन कुछ यह भी कहते नजर आते हैं कि "मैं" बड़ा गहरा हूँ। परन्तु यह कहने वालों की भी कमी नहीं कि मैं बहुत उथला हूँ।

कुछ कहते हैं कि मेरा साहित्य ध्वनि-व्यंजनाओं से परिपूर्ण है। उसमें बात में से बात और केले के छिलके की तरह पात में से पात निकलते चलते हैं। लेकिन कुछ यह भी कहते हैं कि मेरे साहित्य की चादर इतनी झीनी है कि उसमें कुछ टिकता-रुकता ही नहीं। लेकिन कुछ की शिकायत यह भी है कि मेरे साहित्य में जो बारीकी होनी चाहिए वह नहीं होती।

कुछ मुझे परामर्श देते हैं कि बहुत हुआ यह हलकी रंगत का हास्य लिखना छोड़ो। अपने व्यंग्य बाणों को ज़रा पैना करो। वाणी पर धार धरो और सामाजिक विशमताओं, व्यक्तिगत अहंताओं पर सीधा प्रहार करो। लेकिन कुछ कहते हैं कि अजी, हमें हास्य के नाम पर फब्तियाँ, कटुक्तियाँ, चुभन और गालियाँ नहीं चाहिएँ हमें विद्वेष और उपदेश दोनों से नफरत है। आप इस रास्ते पर हर्गिज न जाइएगा।

साहित्य के महारथी चेतावनी देते हैं कि अगर साधारण लोगों के लिए साधारण धरातल पर लिखते रहोगे तो जन्म-भर साधारण ही रहे आओगे। उठो, कुछ असाधारण बनो। कुछ असाधारण लिखो। ऐसा, जिसे पढ़कर पाठक चौंक सकें और समालोचक ठीक से ध्यान दे सकें। तभी तुम साहित्यकारों में अपना स्थान सुरक्षित रख सकोगे, अन्यथा नहीं। लेकिन दूसरी ओर से प्रबल चुनौती भरी एक और ललकार उठती है कि असाधारण होना है तो वहीं रहो। असाधारण का सर्वसाधारण से क्या वास्ता ? तब तुम पाठ्य पुस्तकों में जा सकते हो, पुरस्कार प्रतियोगिता जीत सकते हो। लेकिन जनता के हृदय में आसन नहीं जमा सकते। जनता के हृदय में पैठना हो तो यह राजमुकुट उतारो, पोथियों के गट्ठरों को उधर पटको और इन लबादों को छोड़ो। कान खोलकर सुनो—यह सड़क धूल-कंकड़ और काँटों से भरी है। इस पर रथ, पालकी या कारें नहीं चलतीं। यह सड़क पुरानी सीकरी या नई दिल्ली को भी नहीं जाती। यहाँ तो काँटो की सेज हैं। दुख-दर्द की दुनिया है। तुम्हें भी उसका भागीदार बनना पड़ेगा। भले ही हँसो लेकिन इस हँसी में भी तुम्हें हमारी पीड़ा अभिव्यक्त करनी पड़ेगी। यहाँ आँसुओं को पीकर हँसते हुए चलना पड़ता है। यहाँ केवल बातों की बारीकी से, विचारों की बहस से काम नहीं चलता। बातों के साथ कर्म को और विचारों के साथ पसीने को मिलाने का साहस हो तो आओ, स्वागत है तुम्हारा। हमारे पलक पाँवड़े तुम्हारे लिए बिछे हुए हैं।

चौराहे पर खड़ा "मैं" घबराया हुआ-सा चारों ओर की ये आवाजें सुन रहा हूँ। कभी खुद को देखता हूँ, कभी कहने वालों के मुख को। ध्यान आता है उसका जिसे पीछे छोड़ आया हूँ। सोचता हूँ उसकी जो आगे आ रहा है। सुनते-सुनते बहुत देर हुई। कान पक गए। क्या सचमुच मुझे कुछ तय कर लेना चाहिए? हाँ, बिना तय किए गुजारा नहीं और कहूँ आपसे कि मैंने कुछ तय कर भी लिया है। लेकिन आपको बताऊँगा नहीं, सुनकर शायद आप भी कहीं कुछ कह न बैठें।

हिन्दुस्तान, नई दिल्ली
धुलेंडी २५-३-५६

गोपालप्रसाद व्यास

पुनश्च :—

हे समालोचको, इस बहाने से मैंने अपने गुण-दोष अपने ही श्रीमुख से भली-भाँति वर्णन कर दिए हैं। अब देखना यह है कि इससे अलग भी आपको कुछ कहना है क्या ?

पहली अप्रैल १९५६
१८१५, भागीरथ पैलेस
चांदनी चौक, दिल्ली।

गो० प्र० व्यास

अठारह पुराण

१. कवि हूँ प्रयोगशील १३

२. भाषण दो १७

३. समालोचना किया करो २०

४. अब मूर्ख बनो २३

५. चले आ रहे हैं २६

६. जूते चले गए २६

७. गोपाल चाय पीते हैं ३३

८. काम-शास्त्र ३५

६. नई क्रांति ४१

१०. पलकों पर किसे बिठाऊँ मैं ? ४६

११. साला-माहात्म्य ५१

१२. सलवार चली ५६

१३. पहले मुख पर मल दूँ गुलाल ६७

१४. हाय, इलाहाबाद ७२

१५. हुक्का ७४

१६. गलत समझते मुझको लोग ७७

१७. बाल श्वेत हो जाओ ८२

१८. झंडा-गान ८४
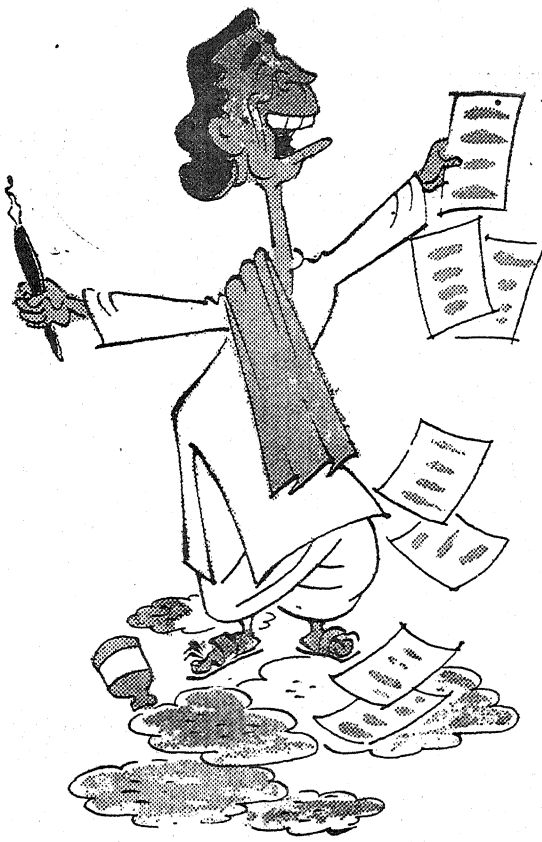
१

कवि हूँ प्रयोगशील !

गलत न समझो, मैं कवि हूँ प्रयोगशील,
खादी में रेशम की गाँठ जोड़ता हूँ मैं।
कल्पना कड़ी-से-कड़ी, उपमा सड़ी-से-सड़ी,
मिल जाय पड़ी, उसे नहीं छोड़ता हूँ मैं॥
स्वर को सिकोड़ता, मरोड़ता हूँ मीटर को,
बचना जी, रचना की गति मोड़ता हूँ मैं।
करने को क्रिया-कर्म कविता अभागिनी का,
पैन तोड़ता हूँ मैं, दवात फोड़ता हूँ मैं॥

श्रोता हजार हों कि गिनती के चार हों,
परन्तु मैं सदैव 'तार सप्तक' में गाता हूँ।
आँख मींच, साँस खींच, जो भी लिख देता, उसे
आपकी कसम, नई कविता बताता हूँ।।
ज्ञेय को बनाता अज्ञेय, सत्-चित् को शून्य,
देखते चलो मैं आग पानी में लगाता हूँ।
अली की, कली की बात बहुत दिनों चली,
अजी, हिन्दी में देखो छिपकली भी चलाता हूँ।।

मुझे अक्ल से आँकिए 'हाफ़' हूँ मैं,
ज़रा शक्ल से जाँचिए साफ़ हूँ मैं।
भरा भीतर गूदड़ ही है निरा,
चढ़ा ऊपर साफ गिलाफ़ हूँ मैं॥
अपने मन में बड़ा आप हूँ मैं,
अपने पुरखों के खिलाफ़ हूँ मैं।
मुझे भेजिए 'ज़ू' में विलंब न कीजिए,
आदमी क्या हूँ, ज़िराफ़ हूँ मैं॥
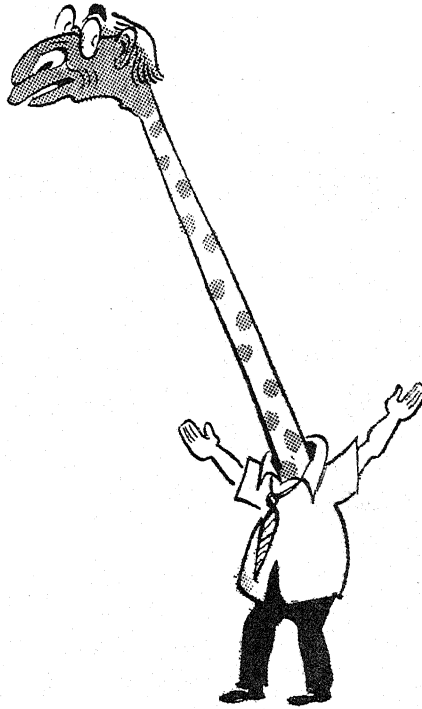
बच्चे शरमाते, बात बकनी बताते जिसे,
वही-वही करतब अधेड़ करता हूँ मैं !
बिना बीज, जल, भूमि पेड़ करता हूँ, खड़ा,
फूँक मार केहरी को भेड़ करता हूँ मैं ।।
बिना व्यंग्य अर्थ की उधेड़ करता हूँ, और
बिना अर्थ शब्दों की रेड़ करता हूँ मैं ।
पिटने का खतरा उठाकर भी 'कामरेड',
कालिज की छोरियों से छेड़ करता हूँ मैं ।।

२

भई, भाषण दो ! भई, भाषण दो ! !

यदि दर्द पेट में होता हो,
या नन्हा-मुन्ना रोता हो,
या आँखों की बीमारी हो,
अथवा चढ़ रही तिजारी हो,

तो नहीं डाक्टरों पर जाओ,
वैद्यों से अरे न टकराओ,
है सब रोगों की एक दवा——
भई, भाषण दो ! भई, भाषण दो !!

हर गली, सड़क, चौराहे पर
भाषण की गंगा बहती है,
हर समझदार नर-नारी के
कानों में कहती रहती है——
'मत पुण्य करो, मत पाप करो,
मत राम-नाम का जाप करो,
कम-से-कम दिन में एक बार——
भई, भाषण दो ! भई, भाषण दो !!'

भाषण देने से सुनो, स्वयं
नदियों पर पुल बँध जाएँगे,
बँध जाएँगे बीसियों बाँध,
ऊसर हज़ार उग आएँगे।
तुम शब्द-शक्ति के इस महत्त्व को
मत विद्युत् से कम समझो।
भाषण का बटन दबाते ही
बादल पानी बरसाएँगे।

इसलिए न मैला चाम करो,
दिन-भर प्यारे, आराम करो !
संध्या को भोजन से पहले,
छोड़ो अपने कपड़े मैले,

तन को सँवार, मन को उभार,
कुछ नये शब्द लेकर उधार,
प्रत्येक विषय पर आँख मूँद—
भई, भाषण दो ! भई, भाषण दो !!

३

समालोचना किया करो !

जब कुछ नहीं समझ में आए,
दिल-दिमाग धोखा दे जाए,
बटन कोट के जाँय टूटते,
टोपी किन्तु बड़ी हो आए।

हाथ-पैर पतले पड़ जाएँ
किन्तु बुद्धि हो आए मोटी,
जब पर-हित-चिन्ता में तुमको
अच्छी लगे न घर की रोटी।
तो तुम कहना मान,
कलम को तान,
अरे, पैना लो जिह्वा--
समालोचना किया करो, ए हिन्दुस्तानी भाई !
तुम समालोचना किया करो !

जब खुद आगे बढ़ न सको तुम,
कहीं तरक्की कर न सको तुम,
लोग लगाएँ लाख नसेनी
लेकिन ऊपर चढ़ न सको तुम।
सारी तिकड़म, भारी कोशिश,
चतुराई चौपट हो जाए,
कोई साला, बहनोई या
मामा-फूफा काम न आए।
तो जो बढ़ता जाय,
अकड़ता जाय,
उसी के पीछे पड़कर--
टाँग पकड़ तुम लिया करो, ए हिन्दुस्तानी भाई !
तुम समालोचना किया करो !

जब तुमको भी मिले न परमिट,
लड़का हो न नौकरी में फिट,
लड़की को वर मिले न अच्छा,
घर वाली करती हो किट-किट !

धोबी के घर में शादी हो,
भंगी अगर देर से आए,
नाई का लग जाय उस्तरा,
पैर फिसल छिलके से जाए ।
तो तुम मेरे साथ,
नचा कर हाथ,
खड़े चौराहे पर हो——
नेहरू को गाली दिया करो, ए हिन्दुस्तानी भाई !
तुम समालोचना किया करो !
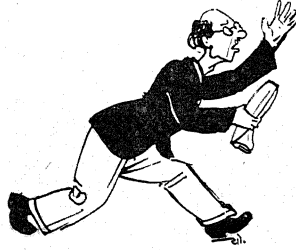
४

अब मूर्ख बनो···!

बन चुके बहुत तुम ज्ञानचन्द,
बुद्धिप्रकाश, विद्यासागर,
पर अब कुछ दिन को कहा मान
तुम लाला मूसलचन्द बनो !
अब मूर्ख बनो, मतिमन्द बनो !

यदि मूर्ख बनोगे तो प्यारे,
दुनिया में आदर पाओगे।
जी, छोड़ो बात मनुष्यों की,
देवों के प्रिय कहलाओगे !

लक्ष्मीजी भी होंगी प्रसन्न,
गृहलक्ष्मी दिल से चाहेंगी।
हर सभा और सम्मेलन के
अध्यक्ष बनाये जाओगे !
पढ़ने-लिखने में क्या रक्खा
आँखें खराब हो जाती हैं।
चिन्तन का चक्कर ऐसा है,
चेतना दगा दे जाती है।
इसलिए पढ़ो मत, सोचो मत,
बोलो मत, आँखें खोलो मत,
तुम पूरे स्थितप्रज्ञ बनो,
सच्चे सम्पूर्णानन्द बनो।
अब मूर्ख बनो, मतिमंद बनो !

मत पड़ो कला के चक्कर में,
नाहक ही समय गँवाओगे।
नाहक सिगरेटें फूँकोगे,
नाहक ही बाल बढ़ाओगे।
पर मूर्ख रहे तो आस-पास
छत्तीस कलाएँ नाचेंगी,
तुम एक कला के बिना कहे ही
छः-छः अर्थ बताओगे।
सुलझी बातों को नाहक ही
तुम क्यों उलझाया करते हो ?
उलझी बातों को अमाँ, व्यर्थ में
कला बताया करते हो !

ये कला, बला, तबला, सारंगी
भरे पेट के सौदे हैं,
इसलिए प्रथमतः चरो,
पुनः विचरो, पूरे निर्द्वन्द बनो,
अब मूर्ख बनो, मतिमन्द बनो !

हे नेताओ, यह याद रखो,
दुनिया मूर्खों पर कायम है।
मूर्खों की वोटें ज़्यादा हैं,
मूर्खों के चन्दे में दम है।
हे प्रजातंत्र के परिपोषक,
बहुमत का मान करे जाओ !
जब तक हम मूरख ज़िंदा हैं
तब तक तुमको किसका ग़म है?
इसलिए भाइयो, एक बार
फिर बुद्धूपन की जय बोलो !
अक्कल के बन्द किवाड़ करो,
अब मूरखता के पट खोलो !
यह विश्व-शान्ति का मूल मन्त्र,
यह राम-राज्य की प्रथम शर्त,
अपना दिमाग गिरवी रखकर,
खाओ, खेलो, स्वच्छन्द बनो !
अब मूर्ख बनो, मतिमन्द बनो !

५

···चले आ रहे हैं !

है कद इनका गुटका,
मगर पेट मटका,
अजब इनकी बोली,
गजब इनका लटका,
है आँखों में सुरमा,
औ' कानों में बाला,
ये ओढ़े दुशाला चले आ रहे हैं !
ये लाली के लाला चले आ रहे हैं !

कभी ये न अटके,
कभी ये न भटके,
खरे ही चले इनके
सिक्के गिलट के !
खरे ये न खोटे,
लुढ़कने ये लोटे,
बिना पंख देखो उड़े जा रहे हैं !
ये लाली के लाला चले आ रहे हैं !

है ओठों पर लाली,
रुखों पर गुलाली,
घड़ी जेब में है,
छड़ी भी निराली,
ये सोने में पलते,
ये चाँदी में चलते,
ये लोहे में ढलते हैं गरमा रहे हैं !
ये लाली के लाला चले आ रहे हैं !

ये कम नापते हैं,
ये कम तोलते हैं,
ये कम जाँचते हैं,
ये कम बोलते हैं,
ये 'ला' ही पढ़े हैं,
तभी तो बड़े हैं,
न छेड़ो इन्हें, हाय शरमा रहे हैं !
ये लाली के लाला चले आ रहे हैं !

ये पोले नहीं हैं,
बड़ा इनमें दम है,
ये भोले नहीं हैं,
छँटी ये रकम हैं,
बड़ा हाज़मा है,
इन्हें सब हज़म है,
हैं बातें बहुत, हम न कह पा रहे हैं !
ये लाली के लाला चले आ रहे हैं !

पढ़ें इनके नौकर
अजी, ये गुने हैं,
किसी भाड़ में ये न
अब तक भुने हैं,
हो सरदार कोई,
या सरकार कोई,
ये बढ़ते रहे हैं, बढ़े जा रहे हैं !
ये लाली के लाला चले आ रहे हैं !

६

जूते चले गए···!

हिन्दी का प्रश्न तो अभी सुलझा नहीं साहब,
मेरठ में जाके मेरे तो जूते चले गए !

जी, कुछ भी बात नहीं थी
अच्छा-बीछा घर से आया था।
बीवी ने बड़े चाव से मुझको
बालूजा पहनाया था ॥

बोली थीं, "देखो, हँसी नहीं;
जब कभी मंच पर जाना तुम।
ये हिन्दी का सम्मेलन है
जूतों को जरा बचाना तुम!"

"क्या मतलब" तो हँसकर बोलीं,
"जब से आज़ादी आई है।
तुमने तो 'जग्गो के चाचा'
सारी ही अकल गँवाई है!!

[अरे] इन सभा और सम्मेलन में
जो बड़े-बड़े जन आते हैं।
तुम नहीं समझना इन्हें बड़े
उद्देश्य खींचकर लाते हैं।।

इनमें आधे तो ऐसे हैं
जिनको घर में कुछ काम नहीं।
आधों में आधे ऐसे, हैं
जिनको घर में आराम नहीं।।

मतलब कि नहीं बीवी जिनके
या बीवी जिन्हें सताती है।
या नये-नये प्रेमीजन हैं
औ' नींद देर से आती है।।"

मैंने टोका, "लैक्चर छोड़ो
मतलब की बात बताओ तुम!
लाओ होती है देर, जरा
वह ओवरकोट उठाओ तुम।।

हे कामरेड, हिन्दी वालों की
निन्दा नहीं किया करते।
ये सरस्वती के पूत, किसी के
जूते नहीं लिया करते ।।

फिर सम्मेलन में तो सजनी,
नेता-ही-नेता आते हैं।
उनको जूतों की कौन कमी
लाते ले जाते खाते हैं ।।"

तो बोलीं, "मैं इन बातों को
बिलकुल भी नहीं मानती हूँ,
मैं तुमको और तुम्हारे
नेताओं को खूब जानती हूँ ।।

सच मानो, नहीं मज़ाक
सभा में ऐसे भी कुछ आते हैं।
जो ऊपर से सज्जन लगते
लेकिन जूते ले जाते हैं ।।

सो मैं जतलाये देती हूँ
जूतों से अलग न होना तुम !
ये न्यू-कट अभी पिन्हाया है
देखो न इसे खो देना तुम ।।

उन स्वयं-सेवकों की बातों पर
हरगिज़ ध्यान न देना तुम !
ये लम्बी-लम्बी जेबें हैं
जूते इनमें रख लेना तुम ।।"

"पर क्या बतलाऊँ मैं साहब
बीवी का कहा नहीं माना।
औरत कह करके टाल दिया
बातों का मर्म नहीं जाना।।

मैं कुछ घंटों के लिए लीडरी
करने को ललचा आया।
जूतों को जेब न दिखलाई
बाहर ही उन्हें छोड़ आया।।

मैं वहाँ मंच पर बैठा, बस,
ख़ुद को ही पन्त समझता था।
पब्लिक ने चौखट समझा हो
ख़ुद तो गुणवन्त समझता था।।

जी जूतों की क्या बात, वहाँ
मैं अपने को ही भूल गया।
जो भीड़ सामने देखी तो
हिन्दी का नेता फूल गया।।

पर खुली मोह-निद्रा मेरी
तो उदित पुराने पाप हुए।
बाहर आकर के देखा तो
जूते सचमुच ही साफ हुए।।"

७

गोपाल चाय पीते हैं !

विश्व में विषमता है सुनो साम्यवादीजन,
आज के अशर्फीलाल, भरे नहीं रीते हैं।
शारदा जी लेख लिखती हैं, छपते ही नहीं,
नाम नरसिंह गीदड़ों से गये बीते हैं।।

ब्रह्म के प्रकास करें भ्रम का विकास सदा,
युद्धवीरसिंह भी न एक युद्ध जीते हैं।
धनपाल निर्धन, बने हैं मूर्ख लेखपाल,
आज के गोपाल, दूध नहीं चाय पीते हैं।।

८

काम-शास्त्र !

"किस खूँटे से बँधे हुए हो?
कहाँ-कहाँ चरते फिरते हो?"
बिगड़े दिल एक लगे पूछने—
"अमाँ, आजकल क्या करते हो?"

"क्या करता हूँ अजी, आजकल
नौ बजते ही उठ जाता हूँ।
बारह बजे लंच लेता हूँ
तीन बजे फिर फल पाता हूँ॥

छः बजते ही ब्यालू करता,
दूध बाद में पी आता हूँ।
और आठ बजने से पहले
तान के खूँटी सो जात. हूँ॥"

"तेरह घंटे तक सोते हो
नर हो या रावण के भाई ?
हरे-हरे ! इस मँहगाई में
साँडों-सी कर रहे चराई !

उठो, जागरण की बेला है
अब न और आराम करो रे !
हल पकड़ो, या कल पकड़ो,
काम करो, कुछ काम करो रे !"

"अमाँ, काम करना तो हमको
नहीं पिताजी ने सिखलाया ।
छै दर्जे तक पढ़े वहाँ भी
नहीं काम का 'लैसन' आया !

फिर गीता में लिखा हुआ है
काम-क्रोध से दूर रहो रे !
मुझ-जैसे निष्काम पुरुष से
बात काम की नहीं कहो रे !

भोले हो तुम, नहीं जानते
काम छूत की बीमारी है ।
बड़े-बड़े ऋषियों-मुनियों की
इसी काम ने मति मारी है ।।

मैं अपनी पत्नी का इकला
पति हूँ मुझे माफ़ फरमाओ !
अपनी काम-कथा को बाबा,
और कहीं जाकर अजमाओ !

न्हाना-धोना, वस्त्र बदलना,
भोजन चबा-चबा कर खाना।
बाल काढ़ना, क्रीम मसलना,
घर में ऊपर-नीचे जाना!

यही काम क्या कम है भाई!
इनमें ही आफत आती है।
इनके ही 'प्रैशर' के मारे,
सेहत नहीं सुधर पाती है॥

फिर 'उनके' नखरों का बोझा
इस पर अलग उठाना होता।
हफ़्ते में दो-चार बार
घंटों ही उन्हें मनाना होता॥
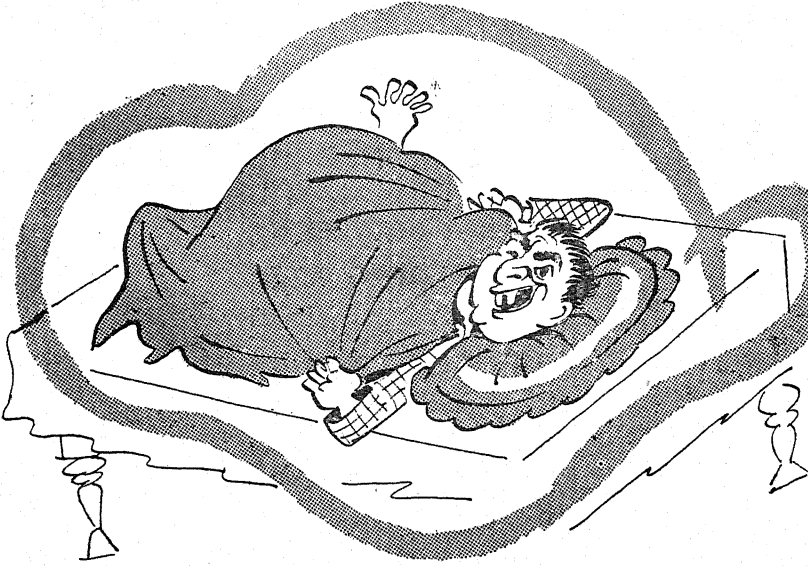
खुद ही पानी पीना होता
खुद ही चाय बनाना होता।
और क्या कहूँ कभी-कभी तो
बिस्तर स्वयं बिछाना होता !

इसको छोड़ो कभी सिर-फिरे
तुम-जैसे आ ही जाते हैं !
लाख टालता रहूँ, मगर
फिर भी दिमाग़ खा ही जाते हैं।।

मैं कहता हूँ अगर बढ़ रही
गोरों या कालों में खाई !
या चमार-'कोरिया' कहीं पर
आपस में लड़ पड़ें लड़ाई !

इसमें क्या मेरा कसूर है,
लड़ने वाले लड़ते ही हैं।
जीने वाले जिन्दे रहते
मरने वाले मरते ही हैं।।

पर दुनिया के मूरख उस पर,
नाहक मगज खपाया करते !
वे करते हैं बहस, पसीने
सुन-सुन मुझको आया करते !

देह बड़ी या काम बड़ा है,
यह तो मुझे जरा बतलाओ !
मेरा मत है मरो भुक्ख
पर नहीं देह का दुक्ख उठाओ।।

लख-चौरासी में भ्रम करके
बड़े भाग नर-देही पाई।
मात-पिता ने बड़े यत्न से
पाला-पोसा इसको भाई!

जिससे पत्नी का सुहाग है,
वंश पिता का जिस पर स्थिर।
उसी देह को जोड़ काम में
करवाते हो हाड़-तुड़ाई!
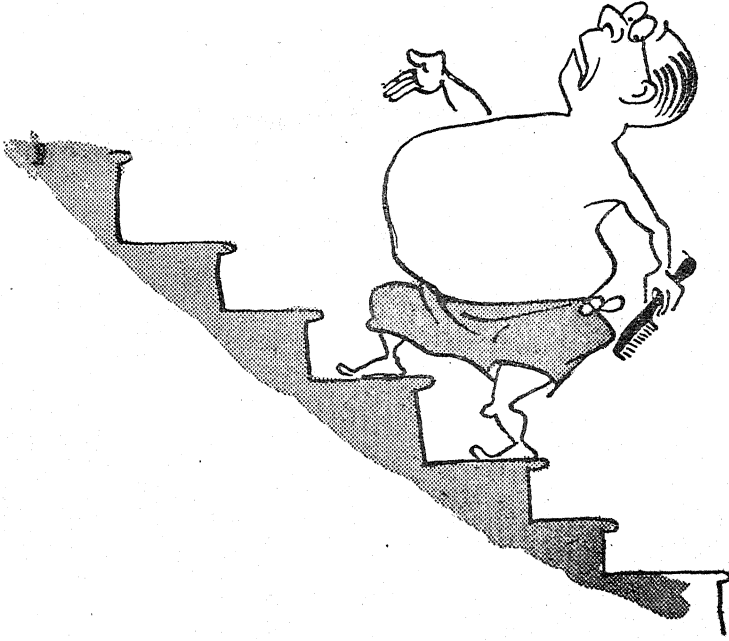
कमल-कली-सी नरम अँगुलियाँ
इनमें हल पकड़ाते हो तुम !
कमल-नाल से बाँध हथौड़ा
दिल में छेद कराते हो तुम !

ये कर नहीं काम के लायक
इनमें मान-पत्र दो भाई !
इनमें हार लपेटो प्यारे
हँसकर दो ताम्बूल-मिठाई !

फिर मेरी जय बोलो लोगो,
यही काम मैं आ सकता हूँ ।
भारत माँ के लिए सिर्फ मैं
इतना कष्ट उठा सकता हूँ ।।

६

नई क्रांति !

कल मुझसे मेरी 'वे' बोलीं,
"क्यों जी, एक बात बताओगे ?"
"हाँ, हाँ, क्यों नहीं," "ज़रा मुझको
इसका रहस्य समझाओगे ?
देखो, सन् सत्तावन बीता,
सब-कुछ ठंडा, सब-कुछ रीता,
कहते थे लोग ग़दर होगा,
आदमी पुनः बन्दर होगा।

पर मुन्ना तक भी डरा नहीं !
एक चूहा तक भी मरा नहीं !
पहले - जैसी गद्दारी है,
पहले - जैसी बेकारी है,
पहले - सी चोरबज़ारी है,
दिन-दिन दूनी मक्कारी है,
यह भ्रान्ति कहो कब जाएगी ?
अब क्रान्ति, कहो, कब आएगी ?"

"यह भी क्या पूछी बात प्रिये !
लाओ, कुछ आगे हाथ; प्रिये !
हाँ, शनि मंगल पर आया है,
उसने ही प्रश्न सुझाया है।
तो सुनो, तुम्हें समझाता हूँ,
अक्कल का बटन दबाता हूँ,
पर्दा जो पड़ा उठाता हूँ,
हो गई क्रान्ति बतलाता हूँ।

हो गए मूर्ख विद्वान्, प्रिये !
गंजे बन गए महान् प्रिये !
दल्लाल लगे कविता करने,
कवि लोग लगे पानी भरने,
तिकड़म का ओपन गेट प्रिये !
मालिश का ऊँचा रेट प्रिये !

नेता से मुश्किल भेंट, प्रिये,
मंत्री का मोटा पेट, प्रिये !
यह क्रान्ति नहीं तो क्या है जी ?
यह ग़दर नहीं तो क्या है जी ?

लो, लिख लो मेरी बातों को,
क्रान्ति के नए उत्पातों को।
अब नर स्वतन्त्र, नारी स्वतन्त्र,
शादी स्वतन्त्र, यारी स्वतन्त्र,
कपड़े की हर धारी स्वतन्त्र
घर-घर में फैला प्रजातन्त्र।
पति बेचारे का ह्रास हुआ।
क्या ख़ूब कोढ़-बिल पास हुआ !
अब हर घर की खाई समाप्त,
बहनें समाप्त, भाई समाप्त,
पंडित समाप्त, नाई समाप्त,
रुपया, आना, पाई समाप्त।
पिछला जो-कुछ था झूठा है,
अगला ही सिर्फ अनूठा है,
अणु फैल-फैल कर फूटा है,
दसखत की जगह अँगूठा है।
यह क्रान्ति नहीं तो क्या है, जी?
यह ग़दर नहीं तो क्या है, जी ?

आदमी कहीं मरता है, जी,
बन्दूकों से तलवारों से ?
आदमी कहीं डरता है, जी,
गोली-गोलों की मारों से ?

बढ़ते जाते ये [बन] मानुष,
युद्धों से कब घबराते हैं ?
खुद को ही स्वयं मिटाने को,
हथियार बनाए जाते हैं।
इसलिए नहीं अब दुश्मन को
सम्मुख ललकारा जाता है,
बस, शीतयुद्ध में दूर-दूर
से ही फटकारा जाता है,
मुस्काकर फाँसा जाता है,
हंसकर चुमकारा जाता है,
पीछे से घोंपा जाता है,
मिलकर के मारा जाता है,
यह क्रांति नहीं तो क्या है, जी ?
यह ग़दर नहीं तो क्या है, जी ?

अभिनेत्री बनतीं सीताजी,
अखबार बने हैं गीताजी।
चेले गुरुओं को डाँट रहे,
अंधे खैरातें बाँट रहे।
महलों में कुत्ते रोते हैं,
अफसर दफ़्तर में सोते हैं।
भगवान् अजायबघर में हैं,
पंडे बैठे मन्दिर में हैं।
गीदड़ कुर्सी पा जाते हैं,
चिमगादड़ मौज उड़ाते हैं।
बगुले पाते हैं वोट यहाँ,
कौए गिनते हैं नोट यहाँ।

उल्लू चिड़ियों का राजा है,
भौंपू ही बढ़िया बाजा है।
गदही ही श्रेष्ठ गायिका है,
लायक अब सिर्फ 'लायका' है।
यह क्रांति नहीं तो क्या है, जी ?
यह ग़दर नहीं तो क्या है, जी ?"
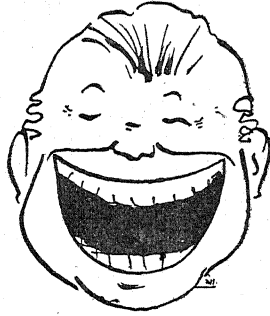
१०

पलकों पर किसे बिठाऊँ मैं ?

तन भी दुरुस्त, मन भी दुरुस्त
टी० बी० का नहीं कुयोग प्रिये!
पच जाता दूध, दही, मक्खन
खप जाता मोहनभोग प्रिये !

हो गए वर्ष बारह पूरे
आगरा छोड़ मैं आया हूँ,
कविता गम्भीर बनाने को
फिर भी कहते हैं लोग प्रिये !

कहते हैं, "कभी-कभी तो तुम,
कुछ बात समझ की किया करो !
कुछ ज़ोर अकल पर दिया करो !
कुछ बात मान भी लिया करो !
इस हरदम की ही-ही हू-हू
ठट्ठे-मज़ाक को छोड़ो तुम
लिख चुके बहुत परिहास, व्यास,
गम्भीर तुकें अब जोड़ो तुम !"

कहते हैं, "ऐसे गीत लिखो
जिनमें से आहें आती हों।
जिनसे उच्छ्वास उफनते हों,
दिल की धड़कन बढ़ जाती हो !
तुम आँख मूँदकर सपनों में
खो जाओ रे, सो जाओ रे !
घर के किस्से लिख लिये बहुत
अब कवि दुनिया में आओ रे!"

"तो तुम्हीं कहो 'पुष्पा की माँ',
अब किस बज़ार में जाऊँ मैं ?
गम्भीर भाव के ये सौदे
कितने तक में कर आऊँ मैं ?

या बिना भाव ही लिखूँ-पढ़ूँ
या बिना गले ही गाऊँ मैं !
या बिना चोट ही 'हाय मरा',
'मर चला, हाय' चिल्लाऊँ मैं !

मैं बोलो किससे प्रेम करूँ,
खुद ही पसन्द कर ला दो ना ?
कैसे उससे व्यवहार करूँ
आता हो तो सिखला दो ना ?
किस तरह भरी जाती आहें,
किस तरह निगाहें मिलती हैं
किस तरह भ्रमर मँडराते हैं ?
तितली किस तरह मचलती हैं ?

ये जान-बूझकर परवाने
किस तरह शमा पर जलते हैं ?
क्यों मीठी नींद न सोते हैं
करवट किसलिए बदलते हैं ?
दिल में परदेशी की कैसे
तसवीर उतारी जाती है ?
किस तरह प्रेम के चक्कर में
ये अक्कल मारी जाती है ?

अब किस 'अनदेखी' को बोलो
सपनों की राह बुलाऊँ मैं ?
सालियाँ भाभियाँ सब मोटी
पलकों पर किसे बिठाऊँ मैं ?

तुम जरा चली जाओ मैके
अन्दाज विरह का कर लूँ मैं,
तारों से परिचय कर लूँ मैं,
ठंडी साँसें कुछ भर लूँ मैं !

तुम भी दिन में कुछ सो लेना
जागेंगे रातों-रात प्रिये !
तारे ही तार बनेंगे तब
कर लेंगे दो-दो बात प्रिये !
मैं तुम्हें लिखूँगा प्रेमपत्र
तुम देना नहीं जवाब प्रिये !
दिल थोड़ा पत्थर कर लेना
पहुँचेगा तुम्हें सवाब प्रिये !

फिर मैं चन्दा में आँख फाड़
तेरा ही रूप निहारूँगा।
कोई भी आती जाती हो,
तुझको ही समझ पुकारूँगा।
कुछ रोऊँगा, कुछ गाऊँगा,
कुछ जीतूँगा, कुछ हारूँगा।
धीरे-धीरे थोड़े दिन में
मैं अपने कपड़े फाड़ूँगा।

खादी के ये मोटे कपड़े,
फटते हैं तो फट जाने दो।
आलोचक खाए जाते हैं
मुझको भी अब 'फिट' आने दो।

मैं बहुत हँस चुका हूँ संगिनि,
मुझको अब इन पर रोने दो।
बनने दो मुझे जरा भारी,
गम्भीर मुझे कुछ होने दो !"

"तुम किनकी बातों में आये
बकने दो इन बजमारों को !
इस प्रेम-व्रेम के चक्कर में
फँसने दो दाढ़ीजारों को !
ये खोटी नीयत वाले हैं
इनकी सोहबत मत किया करो !
दफ़्तर से छुट्टी होते ही
सीधे घर को चल दिया करो !"
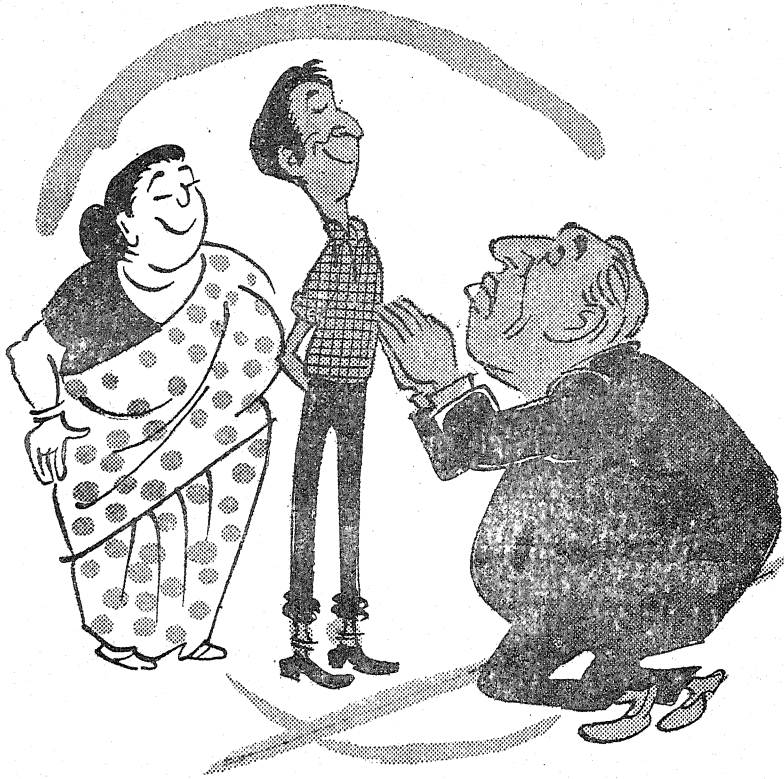
११

साला-माहात्म्य

हे दुनिया के संतप्त जनो,
पत्नी-पीड़ित, हे विकलमनो,
कूआ प्यासे पर आया है
मुझ बुद्धिमान की बात सुनो !
यदि जीवन सफल बनाना है
यदि सचमुच पुण्य कमाना है,
तो एक बात मेरी जानो
साले को अपना गुरु मानो !

छोड़ो माँ-बाप बिचारों को,
छोड़ो बचपन के यारों को,
कुल-गोत्र, बन्धु-बांधव छोड़ो,
छोड़ो सब रिश्तेदारों को।
छोड़ो प्रतिमाओं का पूजन,
पूजो दिवाल के आले को
पत्नी को रखना हो प्रसन्न
तो पूजो पहले साले को।

गंगा की तारन-शक्ति घटी,
यमुना का पानी क्षीण हुआ।
काशी की करवट व्यर्थ हुई,
मथुरा भी दीन-मलीन हुआ।
अब कलियुग में ससुराल तीर्थ
जीवित जागृत पहचानो रे!
यदि अपनी 'सुफल' करानी है
साले को पंडा मानो रे!

इस भव सागर से तरने को
साला ही तरल त्रिवेनी है।
भव बाधाओं पर चढ़ने को
साला मजबूत नसेनी है।
गृह-कलह-कष्ट-काटन के हित
साला ही तेज कतरनी है।
पत्नी-भक्तों की माला में
साला ही श्रेष्ठ सुमरनी है।

इस अग जग के अँधियारे में
साला ही सिर्फ उजाला है।
विधना की कौतुक रचना में
साले का ठाठ निराला है।
साला ही सुख की कुंजी है,
पत्नी तो केवल ताला है।
भाई हो सकता ढाल, मगर,
साला तो पैना भाला है।

वह जिस उर में छिद गया,
प्राण उसके ही हरने वाला है।
वह जिस घर में घुस गया
वहाँ से नहीं निकलने वाला है।
इसलिए जगत् के जीजाओ,
अब अपनी खैर मनाओ तुम।
दुनिया में सुख से रहना है,
साले को शीश झुकाओ तुम !

यदि साले से परहेज़ किया,
तो हरदम साले जाओगे।
ज़िन्दगी कोफ़्त हो जाएगी,
तुम बड़े कसाले पाओगे।
साड़ियाँ फटेंगी रोज-रोज,
बन्दर बरतन ले जाएँगे।
हर रोज़ दर्द सिर में होगा,
तुम दवा कहाँ से लाओगे ?

हफ़्तों तक उनको जीजी से
बातों में मेल नहीं होगा।
चेहरे पर चमक नहीं होगी,
बालों में तेल नहीं होगा।
दालों में कंकर निकलेंगे,
सब्ज़ी में होगा नमक तेज़,
घरनी की कृपा बिना घर में,
रहना कुछ खेल नहीं होगा।

इसलिए भाइयो, मत नाहक
अपनी ताकत अजमाओ रे!
देवीजी से लेकर सलाह
साले को घर ले आओ रे!
तुम स्वयं बैठ जाओ नीचे
आसन पर उसे बिठाओ रे!
ख़ुद पानी पर सन्तोष करो,
साले को दूध पिलाओ रे!

तुम केवल 'हाँ' कहना सीखो,
मत 'ना' ज़ुबान पर लाओ रे!
अपनी कमीज सींकर पहनो
साले को सूट सिलाओ रे!
वाणी में मिश्री घोल चलो,
मीठे ही बोल सुनाओ रे!
दादा को चाहे 'डैम' कहो,
साले को 'डियर' बताओ रे!

साले को ग़ैर नहीं समझो,
साले को समझो जिगरी रे!
साले को गाली मत मानो,
मानो बी० ए० की डिगरी रे!
साले के परम पराक्रम को,
अब तक किस कवि ने कूता है?
ऐ 'डाक्टरेट' लेने वालो,
देखो यह विषय अछूता है!

कुछ सोचा है इस चन्दा का
छाया किसलिए उजाला है?
शंकर भोले ने इसे किसलिए
अपने शीश बिठाला है?
क्यों आसमान पर चढ़ा हुआ,
क्यों इसका रुतबा आला है?
यह भी लक्ष्मी का भाई है,
भगवान् विष्णु का साला है।

यह तो सब लोग जानते हैं,
कान्हा गोकुल के ग्वाले थे।
मक्खन तक चोरी करते थे,
सूरत से बेहद काले थे।
बस, इसीलिए इस दुनिया ने
पूजा भगवान् बना कर के,
गांडीव धनुर्धर पराक्रमी,
योद्धा अर्जुन के साले थे।

क्या कहें कि हम तो जीवन में,
यारो, किस्मत वाले न हुए ।
कोरे 'बामन' के बैल रहे
धनवानों के लाले न हुए।
हम हुए अकेले ही पैदा,
भाई-बहनों वाले न हुए ।
ज़िन्दगी हाय बेकार हुई,
मन्त्रीजी के साले न हुए ।

पर गई हमारी जाने दो,
अपनी तो बात बनाओ तुम !
अपने से नहीं, दूसरों के
अनुभव से लाभ उठाओ तुम !
यदि नहीं नौकरी मिलती है,
या नहीं तरक्की होती है,
तो जो भी अपना अफसर हो
साले उसके बन जाओ तुम !

परमिट मिलने में दिक्कत हो,
ठेके में चान्स न आता हो।
बिजनेस में दाल न गलती हो,
या हर सौदे में घाटा हो!
तो पूछो नहीं ज्योतिषी से,
फौरन ही टिकट कटाओ रे !
तुम फौरन दिल्ली आओ रे !
नुस्खा अचूक अजमाओ रे !

तुम नहीं किसी को दो अर्जी,
तुम नहीं किसी पर जाओ रे।
तुम नहीं किसी की बात सुनो,
अपनी भी नहीं बताओ रे!
कुछ साड़ी लो, कुछ लो मीठा
कुछ फल लो, कुछ लो फूल-पान,
लग जाय दाव आफीसर की
पत्नी को बहन बनाओ रे!

बच्चों के मामा बन जाओ,
बच्ची को गोद खिलाओ रे!
उनको माता के चरण छुओ,
दादा के पैर दबाओ रे!
मत खाली हाथ घुसो घर में,
कुछ लाओ रे! कुछ लाओ रे!
बाबूजी अगर डाट भी दें
बोलो मत, पूँछ हिलाओ रे!

यदि इसी तरह चालीस दिवस,
संयम से ध्यान लगाओगे।
दिन में बेनागा चार बार,
बेबेजी के घर जाओगे।
तो स्वयं बहनजी पिघलेंगी,
बहनोई होंगे मेहरबान।
सच कहता हूँ तुम घर बैठे,
चारों पदार्थ पा जाओगे।

मैं इसीलिए तो कहता हूँ,
साला पद सबसे आला है।
हैं और सभी रिश्ते फीके,
साला बस गरम मसाला है।
खुल गए भाग्य उन जीजा के,
तर गई पीढ़ियाँ तीन-तीन,
जिनके घर पर होकर प्रसन्न,
साले ने डेरा डाला है!

नामुमकिन जिसको सर करना,
साला वह लोहे का गढ़ है।
साले की पहुँच दूर तक है,
साले की चूल्हे में जड़ है।
तुमने भी यह माना होगा,
तुमने भी पहचाना होगा
है सकल खुदाई एक तरफ
जोरू का भाई एक तरफ!

१२

सलवार चली, सलवार चली !

धोती को धड़ से फाड़ चली,
साड़ी की दशा बिगाड़ चली,
घायल कर दिया गरारे को,
लहँगे को चित्त पछाड़ चली !
आ गया पजामे को बुखार,
पैण्टों का आसन डोल उठा !
जब भारत का बच्चा-बच्चा
सलवारों की जय बोल उठा !
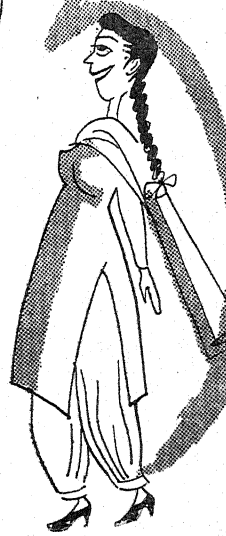
पंजाबिन ने कसकर पहनी,
हँसकर पहनी मदरासिन ने,
गुजरातिन ने बचकर पहनी,
जँचकर पहनी ब्रजवासिन ने!
खतरानी ने चादर उतार,
चुन्नी को गले लगाया है।
इस समय नील के कटरे में,
सलवारों का युग आया है।

बाबू की बीवी ने पहनी,
पहनी लाला की लाली ने।
गोरी ने पहनी तो पहनी
पर पहनी देखो काली ने!
बूढ़ी जवान छोटी-मोटी
सबकी टाँगों में समा गई।
जी, और क्या कहूँ पहनी खुद
मेरी अपनी घर वाली ने!

पहनी मेरी घर वाली ने
तो देखा साली मात हुई!
आ गए ससुर जी चक्कर में,
लड़की को यह क्या बात हुई!
धीरे से सासूजी बोलीं,
"मैं भी सलवार सिलाऊँगी!
लल्ली ने रेशम की पहनी
मैं लट्ठे की बनवाऊँगी!"

अब गया जमाना डेढ़ हाथ का
घूँघट करने वाली का ।
अब गया जमाना जनम-जनम
घर में ही सड़ने वाली का।
कुमारियाँ पुराने जुल्मों का
अब बदला लेने वाली हैं ।
सलवार पहनकर खम्म ठोक
पुरुषों से लड़ने वाली हैं !

हो जाओ पैण्टो होशियार,
धोती पाजामो, जागो रे !
नेहरू जाकिट, गांधी टोपी,
अपने गरूर को त्यागो रे !
अचकन, चपकन, कुर्ते, कमीज
ओ कोट, लोट ले जाओ अब ।
बज गया बिगुल सलवारों का
मैदान छोड़कर भागो रे !

पैदल से, साइकिल, ताँगों में
फर-फर करती वह निकल चली ।
कारों में चढ़ सर-सर करती
बेकारों को कर विकल चली !
नवयुवकों को ललकार चली,
लो प्रौढ़ों को फुफकार चली ।
है शोर बचो, भागो, भागो,
सलवार चली, सलवार चली !

सोते जगते, घर में, बाहर
जिस ओर किसी की नज़र गई।
फर-फर फहराती, लहराती
सलवार जिगर में उतर गई।
क्षण इधर गई, क्षण उधर गई,
लगता न पता वह किधर गई।
आँखों से आँखें पूछ रहीं
'क्या हुआ भई?' मच गई हई।

टन-टन-टन करने वालों के
रिक्शे हाथों से छूट पड़े।
दल-के-दल पैदल ठिठक गए
घोड़े तांगों से टूट बढ़े।
कारों के इंजिन फेल हुए
भिड़ गए सवार सवारों से !
दम भर में 'ट्रैफिक' ठप्प हुआ
यारो, उनकी सलवारों से !

बस घर-घर करके जाम हुई,
ट्रामों का स्वर निस्पन्द हुआ।
वह नया-नया 'फटफटिया' भी
सलवार देखकर बन्द हुआ।
कोई नतमुख, बेजान गिरा,
करवट कोई उत्तान गिरा।
बाजार बीच भीषणता से
निर्बल रिपटा, बलवान गिरा।

कोई व्याकुल भर आह रहा,
कोई था विकल कराह रहा,
पंडित कहता था हाय राम,
मुल्ला चिल्ला अल्लाह रहा !
बाबूजी सुधि ऐसे भूले
था ध्यान कहीं, था 'सूट' कहीं।
बेहोश हुए ऐसे मिस्टर,
था टोप कहीं, था बूट कहीं !

इसकी चुन्नट के चक्कर में
लाखों को चक्कर आ निकले !
इसकी सलवट की धारों में
लाखों ही गोते खा निकले !
इसके फुँदने के फंदे में
लाखों के दिल हो गए कैद,
इसके घेरे के घेरे में,
लाखों ही प्राण समा निकले !

चाँदनी चौक, घंटाघर पर,
सर-सर के स्वर झंकार उठी !
गांधी आश्रम, गुरुद्वारे से
फर-फर करती फुंकार उठी !
भग गए भूत, गौरी सहमी,
नादिया बिदककर खड़ा हुआ।
गौरीशंकर के मंदिर पर
हर-हर सलवार पुकार उठी !

वह लालकिले के इर्द-गिर्द,
लहरा-लहरा मज़बूत हुई।
यमुना के पावन पानी में,
डुबकी लेकर के पूत हुई।
खुल गई समाधी सिद्धों की
योगीजन भूले ज्ञान ध्यान।
वह 'राम' उलटकर 'मरा' हुआ
यों कामदेव की दूत हुई।

बारहखम्बे के आलम में
बाँहें उलझाकर बालम में,
ऊँची एड़ी पर चढ़ी हुई,
लापता कमर में पड़ी हुई,
कुछ खड़ी हुई, कुछ बढ़ी हुई,
सबकी नज़रों में गड़ी हुई,
कायल करती, घायल करती,
तलवार नहीं, सलवार चली।

इंडिया गेट, ओखला, कुतब,
बापूजी की पावन समाधि,
हर जगह, हर घड़ी, हर क्षण में
सलवार दिखाई देती है !
हर पण्डित से प्रोफेसर से
'एडीटर' या आफीसर से
संसद् के मान्य सदस्यों से
सलवार सुनाई देती है !

'सलवार चली, सलवार सली !'
मुर्दे कहते हैं, जिन्दे भी !
'सलवार चली, सलवार चली !'
रटने लग गए परिन्दे भी !
बूढ़ों में हलचल-सी फैली,
बिजली छू गई जवानों में।
'सलवार चली, सलवार चली'
गूँजा दुनिया के कानों में।

१३

पहले मुख पर मल दूँ गुलाल
पीछे कुछ देखा जाएगा !

इस बार मिसिज माउण्टबेटन
लन्दन से दिल्ली आई हैं।
अपनी झोली में चटकदार
कुछ नए रंग भर लाई हैं।
"तो आओ, भाभी, भारत की
पहली होली स्वीकार करो !
देवर हूँ, मलता हूँ गुलाल
झिझको मत, मत इन्कार करो !

तुम नहीं जानती हो रूपसि,
मुश्किल से मौका आया है।
भाभीजी तुम्हें बनाने को
कितनों ने रक्त बहाया है।
जिस आजादी के डोले में
तुम यहाँ बैठकर आई थीं,
उसको पाने के लिए
हजारों ने सर्वस्व गँवाया है।

अब तुम मेरी पिचकारी से
बचती हो, भौंह चलाती हो !
मेरी इस देशी आदत को
फूहड़पन कह धमकाती हो !
तो चाहे कहो हजार, आज
मैं अपनी-अपनी ठानूँगा !
होली का दिन है मैम सा'ब,
मैं नहीं किसी की मानूँगा !"

"...तो मत मानो बाबू साहब,
लेकिन पहले घी ले आओ।
फिर रँग पड़ने लग जायेगा,
पहले बाजार चले जाओ !
लो उठो, तुम्हारी कविता तो
घर की है, फिर बन जाएगी।
हो रहे कोयले तेज अंगीठी
यूँ ही मारी जाएगी !"

"तुममें तो जग्गो की जीजी
सचमुच बिलकुल रोमांस नहीं।
तुम कभी 'सुरैय्या' बन पाओगी
इसके कोई चांस नहीं !
लो वर्षों बाद आज मेरा
कवि जरा मौज में आया था।
माउण्टबेटन की बीवी को
बस भाभी जरा बनाया था !

तो सह न सकीं तुम रिश्ते को
आकर के कविता बिदका दी !
जब इधर जागने लगे भाव
तो उधर अँगीठी सुलगा दी !"
"हाँ जी, मुझमें रोमांस तुम्हें
अब नज़र कहाँ से आएगा ?
दिल्ली में बसना, कवि होना
देखो क्या-क्या रँग लाएगा !

पर मैं कहती हूँ सुनो
जब तलक यहाँ अंगीठी जलती है।
तब तक ही कविजी की कविता
भावों से भरी उछलती है !
जिस रोज महाशय, इस घर की
सिगड़ी ठण्डी हो जाएगी।
उस रोज पटक जाओगे कवि,
कविता मंदी हो जाएगी !

आगे से मरी सुरैया की
जो चर्चा घर में लाओगे,
तो अपने घर में अपने को
इकला ही बैठा पाओगे।"
"हैं'''हैं तुम कहाँ चली, देखो,
जाने दो बात सुरैया की।
गोली मारो उस भाभी को,
ऐसी-की-तैसी भैया की।

हाँ, कहो कौन-सा घी लाऊँ,
क्या-क्या चीजें खिलवाओगी ?
आलू की लाल कचौड़ी में
मिर्चें तो नहीं मिलाओगी ?
और देखो प्रिय मैं बामन हूँ
मथुरा का हूँ, फिर होली है !
क्या इस अवसर पर भी न मुझे
तुम मालपुए खिलवाओगी ?

मैं करता नहीं मज़ाक, जब
कभी भी तुम गुस्सा होती हो।
तो मेरे मन की पोखर में
बस नये सिंघाड़े बोती हो !
मतलब कि उस समय ही तुम पर
वह सच्चा रूप निखरता है।
झुक जाते टहनी पर गुलाब
शशि भी मुख नीचा करता है !

बस क्या बतलाऊँ तब दिल पर
वह मधु रेखा खिंच जाती है !
धुल जाती है मन की जड़ता
इक नई चेतना आती है !"
"जी हाँ रहने भी दो, सचमुच
यदि नई चेतना आई है,
तो लो कनस्तरी घी लाओ,
इसमें ही छुपी भलाई है !

और मालपुए खाने हों तो
खोआ भी कुछ लेते आना !
चुन्नू रो रहा, इसे देखो,
नीचे माँजी को दे जाना !"
"ओ, रोने दे चुन्नू को भी
घी भी पीछे आ जायेगा !
पहले मुख पर मल दूँ गुलाल,
पीछे कुछ देखा जायेगा !"

१४

हाय, इलाहाबाद !

नोंक-झोंक किससे करें,
किससे करें फसाद;
भय्याजी ने तज दिया,
हाय, इलाहाबाद !

हाय, इलाहाबाद,
जहाँ हिन्दी-जन बसते,
लेखक औ' अमरूद
जहाँ दोनों ही सस्ते ।

घर-घर लागे प्रेस,
किताबें धड़-धड़ छपतीं,
ग्राहक कोऊ नाहिं,
सबै आपस में खपतीं;
मीठे हैं अमरूद,
किन्तु रचनाएँ फीकीं,
ताहू पै इतराय--
नगरिया नेहरू जी की !
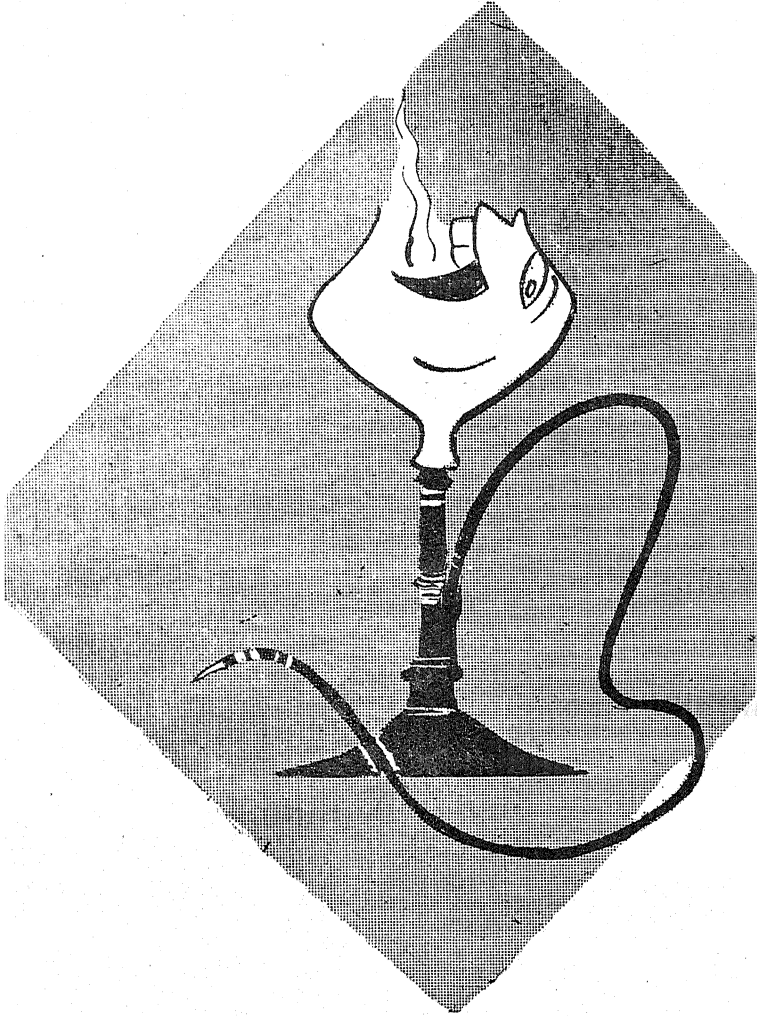
१५

हुक्का !

भाइयो, और बहनो,
सावधान, कानो पर कनटोप पहनो,
क्योंकि मैं गाता हूँ।

होशियार,
तानों से आसमान ढाता हूँ।
खबरदार,
हाथों से मेघ पकड़ लाता हूँ।
खुद ही बजाता हूँ
ढम-ड़म-ढम ढमा ढोल,
लीजिए बलाएँ कलाएँ अब खाता हूँ।
भाषा की भैरवी में,
भावों की पैरवी में,
आप देखते रहें कमाल क्या दिखाता हूँ ?
लम्प नहीं लुक्का हूँ,
तर्क नहीं मुक्का हूँ,
हिन्दी के हल्ले में,
कवियों के गल्ले में,
छन्द नहीं, मुक्तक हूँ, तुक्तक हूँ, तुक्का हूँ।

× × ×

अन्दर कुछ पानी है,
बाहर कुछ धुआँ है,
मुँह पर अंगारे हैं,
भीतर कुछ हूं-हां है।
मिनट-मिनट जलता हूँ,
मिनट-मिनट सड़ता हूँ,
फिर भी लहरता हूँ,
फिर भी अकड़ता हूँ,
बैठकर विरादरी में
पंचों में, गोष्ठी में,

गड़बड़ भी करता हूँ
गुड़-गुड़ भी करता हूँ।
आप जैसा सोचिए,
अक्ल को खरोचिए,
सोच को दबोचिए,
सिर के बाल नोचिए,
कवि मैं नहीं हूँ
आदमी भी नहीं, हुक्का हूँ !

१६

ग़लत समझते मुझको लोग !

क्या सोचा करता हूँ मैं—

गलत समझते मुझको लोग,
मुझे न पर-निन्दा का रोग।
पर-धन नहीं सुहाता है,
नहीं पराया भाता है।

मैं विनम्र, मैं अतिशय दीन,
हरदम मौलिक, सदा नवीन।
केवल यश का भूखा हूँ,
इसी फिकर में सूखा हूँ।

वरना क्या पाई है देह,
कोई इससे कर ले नेह ।
देखो मेरी लम्बी नाक,
पतले ओठ, आम की फाँक !
आँखें ही बस छोटी हैं,
टाँगें ही कुछ मोटी हैं ।
थोड़ा निकल पड़ा है पेट,
मामूली-सी ये अलसेट ।
वरना क्या पाई है शक्ल !
आहा ! ग़जब मिली है अक्ल ! !
सचमुच बड़ा आदमी मैं !
सचमुच भला आदमी मैं,
एक कमी कर दी करतार,
भेजी मुझको कैसी नार ?
उसे सिखाया तनिक न प्यार,
जब देखो तब भौंह कमान,
जब देखो तब चलते बान ।
शरणागत हूँ क़ायल हूँ,
फिर भी रहता घायल हूँ ।
फिरता भागा-भागा हूँ ।
सचमुच बड़ा अभागा हूँ ।
दुनिया मुझसे जलती है,
मेरी कहीं न गलती है ।
अरे खुदा यदि तू है नेक,
मेरा दुश्मन बचे न एक,
सभी पडोसी हों कंगाल,
सिर्फ रहूँ मैं मालामाल !

मेरे आलोचक मर जायँ !
अथवा मुँह काला कर जायँ !
कहीं नहीं मुझको भय हो,
दुनिया में मेरी जय हो !

लोग सोचते हैं कुछ और—
सबसे बुरा आदमी ये,
सबसे गिरा आदमी ये।
सबसे घटिया इसकी शक्ल,
सबसे रद्दी इसकी अक्ल !
ये लोगों से जलता है,
तिरछा-तिरछा चलता है !
इसकी नीयत खोटी है,
इसकी बोटी मोटी है।
सदा मारता रहता गप्प,
ये पेटू, ये हाऊ-हप्प !
इसकी आदत बहुत बुरी,
मुख में राम, बगल में छुरी !
क्या पूछो इसके ऐमाल,
तुम क्या जानो इसके जाल ?
तुम क्या समझो इसकी चाल,
बाहर से लगता कंगाल !
ये दौलत में अंधा है,
नहीं खुदा का बन्दा है,
तेजी है या मन्दा है,
इसको मिलता चन्दा है।

इसको भली मिली है नार,
मुँह से चुप-चुप दिल से प्यार !
यद्यपि उससे पलता है,
फिर भी उसको छलता है ।
उस पर गीत बनाता है,
जग को सुना रिझाता है,
बाहर दीन दिखाता है,
घर में धौंस जमाता है ।
फिर भी इसे मिले हैं मीत,
जो इसके ही गाते गीत !
जो इस पर होते कुर्बान !
जो इस पर देते हैं जान !
ये न किसी का क़ायल है,
सबको करता घायल है ।
जब अपनी पर आता है,
सबको धता बताता है ।
अरे खुदा यदि तू है नेक,
तो दे इसके घुटने टेक !
इसके बाल शीघ्र पक जायँ,
इसके कंधे भी झुक जायँ ।
इसके शुभचिंतक मर जायँ,
अथवा मुँह काला कर जायँ !
कुछ ऐसा कर दे भगवान्,
इसका बचे न नाम-निशान ।

लकिन वे क्या कहती हैं ?—

"जीं, बस, ये तो भोले हैं,
मक्खन के-से गोले हैं।
कोई इन्हें चट्ट ले जाय,
कोई इन्हें बट्ट ले जाय,
इन्हें नज़र लग जाती है,
इन्हें न तिकड़म आती है।
ये बहकाए जा सकते।
ये फुसलाये जा सकते।
इनको ज़रा तमीज़ नहीं,
फबती इन्हें कमीज़ नहीं।
इन्हें सुहाते कुरते हैं,
ये बैंगन के भुरते हैं।
दिन-भर दफ़्तर ढोते हैं,
बाक़ी थककर सोते हैं।
इन्हें किसी की चाह नहीं,
मैं ही इन्हें निबाह रही !
ये तिक-तिक-तिक टट्टू हैं,
मेरे मियाँ निखट्टू हैं!"

१७

अब तो बाल श्वेत हो जाओ !

बाल, कृष्ण तुम रहे बहुत दिन,
कुंचित घुँघराले, अलबेले।
चपल अंगुलियों की चुहलों में
जाने कब-कब तुम खुल खेले ?
शीत, ताप, वर्षा के बादल
जाने तुमने कितने झेले ?
और सहे साबुन-पानी के
रोज-रोज रेले - पर - रेले।
पर इस जीवन के मेले में
मिला न कोई मीत मनोहर,
तो तुम भी रँग बदलो साथी,
अब 'अपने पन' पर आ जाओ !
अब तो बाल श्वेत हो जाओ !

युग वह गया कि जब बहती थी
मधुवन में कालिन्दी काली ।
कृष्ण 'श्यामसुन्दर' कहलाए,
राधा थी जिन पर मतवाली ।
राम 'जलद श्यामल' के पीछे
सीता चुप-चुप छाँह बनी थी,
काली लैला, गोरे मजनूँ के
सपनों की बाँह बनी थी ।
अब गोरा तन, वस्त्र धवल,
मुख पर स्मित का बड़ा मोल है,
मेरे केश, कालिमा अपनी
तुम भी अब अन्दर पहुँचाओ !
अब तो बाल श्वेत हो जाओ !

क्यों कानों पर झाँक रहे हो,
बढ़ो देश आज़ाद हुआ है !
ऊपर उठो, कनपटी लाँघो,
व्यर्थ समय बरबाद हुआ है ।
मेरे तन-मन की कालिख पर
परदा तुम्हीं डाल सकते हो ।
अँधियारे में अब प्रकाश का
दीपक तुम्हीं बाल सकते हो !
कवि केशव नाहक चिन्तित थे,
पर मेरा है ध्येय दूसरा
बाबा, बाल सफेद हुए अब
क्यों डरते हो कदम बढ़ाओ !
अब तो बाल श्वेत हो जाओ !

१८

झंडा-गान
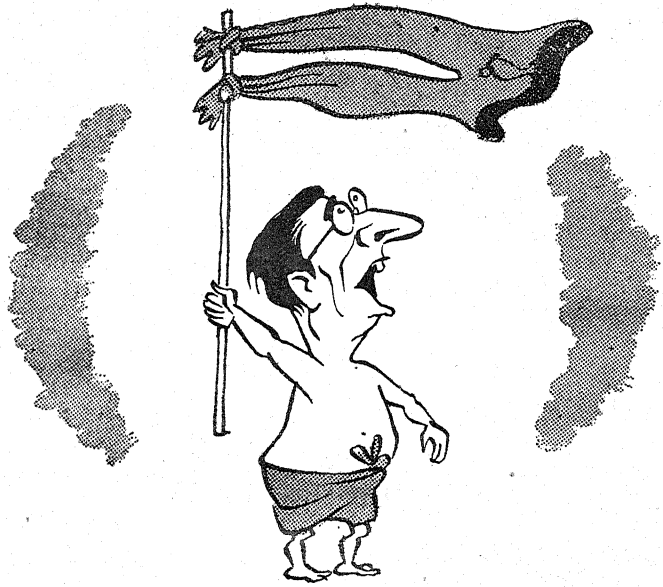
झंडा ऊँचा रहे हमारा।
यह पाजामे का दो धारा।

मूरखता के भीषण रण में,
लखकर बुद्धि घटे क्षण-क्षण में
काँपे शत्रु देखकर मन में
सूखे ज्ञान-बुद्धि की धारा!

आओ प्यारे मूर्खो आओ,
मूर्ख धर्म पर बलि-बलि जाओ।
एक साथ सब मिलकर गाओ।
प्यारा मूरख धर्म हमारा।

इस झंडे के नीचे निर्भय,
बनें मूर्ख हम अविचल निश्चय,
बोलो मूरखता की जय-जय
बे-अक्ली है ध्येय हमारा।

इसकी शान न जाने पाए
चाहे जान भले ही जाए
विश्व मूर्ख करके दिखलाए,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा ?

❦ ❦
❦